

उत्कृष्ट साहित्य

हिन्दी की चुनिन्दा कवितायें

Publication: August, 2014

Published by: Pratilipi.Com

Copyright: Copyright to all individual poems belong to their writers, Pratilipi.Com is just a platform that is facilitating a larger reach for them, *feel free to share this book with as many people as you like.*

कॉपीराइट: सभी व्यक्तिगत कविताओं को कॉपीराइट उनके रचयिता साहित्यकारों के पास हैं, प्रतिलिपी एक मंच-मात्र है जिसके द्वारा हम उनकी रचनाओं को अधिकाधिक लोगों तक पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं. आप इस पुस्तक को औरों के साथ साझा करने के लिये पूर्णतयह स्वतंत्र हैं।

एक औरत के यकीन

मनीषा कुलश्रेष्ठ

एक औरत के
यकीनों का क्या है?
टूटते रहते हैं हर रोज
हाथ से गिरे प्यालों की तरह
बटोर कर फेंक देती है वह
उसे शायद नहीं पता
नहीं करती है वह सामना
बाहर की दुनिया का
एक मर्द के लिये
जो कि बहुत आसान नहीं
बहुत बचाता है
बचाना चाहता है
वह औरत के मासूम यकीनों को
लेकिन कई बार
मुमकिन नहीं होता
मर्दों की दुनिया में
मर्द होने की प्रक्रिया में
कई बार लौटा कर
लाया भी है वह
सही सलामत उन कांच से यकीनों को
लेकिन
घर की देहरी तक
लौटते उसके पांव
यूं थक कर लड़खड़ाते हैं कि
छन्न - से
टूट कर गिर ही पड़ते हैं
औरत के यकीन

जूते और आदमी

अंजू शर्मा

कहते हैं आदमी की पहचान
जूते से होती है
आवश्यकता से अधिक
घिसे जाने पर स्वाभाविक है
दोनों के ही मुँह का खुल जाना,
बेहद जरूरी है
आदमी का आदमी बने रहना,
जैसे जरूरी है जूतों का पाँवों में बने रहना,
जूते और आदमी दोनों ही
एक खास मुकाम पर भूल जाते हैं याददाश्त
आगे के चरण में
आदमी बन जाता है मुंतजर अल जैदी,
जूते भूल जाते हैं पाँव और हाथ का
बुनियादी फर्क

प्रेम कविता

अंजू शर्मा

ये सच है
तमाम कोशिशों के बावजूद
कि मैंने नहीं लिखी है
एक भी प्रेम कविता

बस लिखा है
राशन के बिल के साथ
साथ बिताए
लम्हों का हिसाब,

लिखी हैं डायरी में
दवाइयों के साथ,
तमाम असहमतियों की
भी एक्सपायरी डेट

लिखे हैं कुछ मासूम झूठ
और कुछ सहमे हुए सच
एकाध बेईमानी
और बहुत सारे समझौते,

कब से कोशिश मैं हूँ
कि आँख बंद होते ही
सामने आए तुम्हारे चेहरे
से ध्यान हटा
लिख पाऊँ
मैं भी
एक अदद प्रेम कविता...

ओ देस से आने वाले बता!

अख्तर शीरानी

ओ देस से आने वाले बता!

क्या अब भी वहां के बागों में मस्ताना हवाएँ आती हैं?

क्या अब भी वहां के परबत पर घनघोर घटाएँ छाती हैं?

क्या अब भी वहां की बरखाएँ वैसे ही दिलों को भाती हैं?

ओ देस से आने वाले बता!

क्या अब भी वतन में वैसे ही सरमस्त नज़ारे होते हैं?

क्या अब भी सुहानी रातों को वो चाँद-सितारे होते हैं?

हम खेल जो खेला करते थे अब भी वो सारे होते हैं?

ओ देस से आने वाले बता!

शादाबो-शिगुफ़ता फूलों से मा' मूर हैं गुलज़ार अब कि नहीं?

बाज़ार में मालन लाती है फूलों के गुँधे हार अब कि नहीं?

और शौक से टूटे पड़ते हैं नौउम्र खरीदार अब कि नहीं?

ओ देस से आने वाले बता!

क्या शाम पड़े गलियों में वही दिलचस्प अंधेरा होता है?

और सड़कों की धुँधली शम्माओं पर सायों का बसेरा होता है?

बागों की घनेरी शाखों पर जिस तरह सवेरा होता है?

ओ देस से आने वाले बता!

क्या अब भी वहां वैसी ही जवां और मदभरी रातें होती हैं?

क्या रात भर अब भी गीतों की और प्यार की बाते होती हैं?

वो हुस्न के जादू चलते हैं वो इश्क की घातें होती हैं?

ओ देस से आने वाले बता!

क्या अब भी महकते मन्दिर से नाकूस की आवाज़ आती है?

क्या अब भी मुकद्दस मस्जिद पर मस्ताना अज़ां थरती है?

और शाम के रंगी सायों पर अज़मत की झलक छा जाती है?

ओ देस से आने वाले बता!

क्या अब भी वहाँ के पनघट पर पनहारियाँ पानी भरती हैं?

अँगड़ाई का नक्शा बन-बन कर सब माथे पे गागर धरती हैं?

और अपने घरों को जाते हुए हँसती हुई चुहलें करती है?

ओ देस से आने वाले बता!

क्या अब भी वहां मेलों में वही बरसात का जोबन होता है?
फैले हुए बड़ की शाखों में झूलों का निशेमन होता है?
उमड़े हुए बादल होते हैं छाया हुआ सावन होता है?
ओ देस से आने वाले बता!
क्या शहर के गिर्द अब भी है रवाँ दरिया-ए-हसीं लहराए हुए?
ज्यूं गोद में अपने मन को लिए नागन हो कोई थर्राये हुए?
या नूर की हँसली हूर की गर्दन में हो अयाँ बल खाये हुए?
ओ देस से आने वाले बता!
क्या अब भी किसी के सीने में बाक़ी है हमारी चाह? बता
क्या याद हमें भी करता है अब यारों में कोई? आह बता
ओ देश से आने वाले बता लिल्लाह बता, लिल्लाह बता

ओ देस से आने वाले बता!
क्या गांव में अब भी वैसी ही मस्ती भरी रातें आती हैं?
देहात में कमसिन माहवशें तालाब की जानिब जाती हैं?
और चाँद की सादा रोशनी में रंगीन तराने गाती हैं?
ओ देस से आने वाले बता!
क्या अब भी गजर-दम चरवाहे रेवड़ को चराने जाते हैं?
और शाम के धुंदले सायों में हमराह घरों को आते हैं?
और अपनी रंगीली बांसुरियों में इश्क के नग्मे गाते हैं?

ओ देस से आने वाले बता!
आखिर में ये हसरत है कि बता वो गारते-ईमाँ कैसी है?
बचपन में जो आफ़त ढाती थी वो आफ़ते-दौरां कैसी है?
हम दोनों थे जिसके परवाने वो शम्मए-शबिस्तां कैसी हैं?
ओ देस से आने वाले बता!
क्या अब भी शहाबी आरिज़ पर गेसू-ए-सियह बल खाते हैं?
या बहरे-शफ़क़ की मौजों पर दो नाग पड़े लहराते हैं?
और जिनकी झलक से सावन की रातों के से सपने आते हैं?

ओ देस से आने वाले बता!
अब नामे-खुदा, होगी वो जवाँ मैके में है या ससुराल गई?
दोशीज़ा है या आफ़त में उसे कमबख़्त जवानी डाल गई?
घर पर ही रही या घर से गई, खुशहाल रही खुशहाल गई?
ओ देस से आने वाले बता!|

गज़ल को ले चलो अब गाँव के दिलकश नज़ारों में

अदम गोंडवी

गज़ल को ले चलो अब गाँव के दिलकश नज़ारों में
मुसल्लसल फ़न का दम घुटता है इन अदबी इंदारों में॥

न इनमें वो कशिश होगी, न बू होगी, न रानाई
खिलेंगे फूल बेशक लॉन की लंबी क़तारों में॥

अदीबो! ठोस धरती की सतह पर लौट भी आओ
मुलम्मे के सिवा क्या है फ़लक़ के चाँद-तारों में॥

रहे मुफ़लिस गुज़रते बे-यक़ीनी के तज़रबे से
बदल देंगे ये इन महलों की रंगीनी मज़ारों में॥

कहीं पर भुखमरी की धूप तीखी हो गई शायद
जो है संगीन के साए की चर्चा इश्तहारों में॥

काजू भुने प्लेट में हिस्की गिलास में

अदम गोंडवी

काजू भुने प्लेट में विस्की गिलास में
उतरा है रामराज विधायक निवास में

पक्के समाजवादी हैं तस्कर हों या डकैत
इतना असर है खादी के उजले लिबास में

आजादी का वो जश्न मनाएँ तो किस तरह
जो आ गए फुटपाथ पर घर की तलाश में

पैसे से आप चाहें तो सरकार गिरा दें
संसद बदल गई है यहाँ की नखास में

जनता के पास एक ही चारा है बगावत
यह बात कह रहा हूँ मैं होशो-हवास में॥

ज़ुल्फ़-अँगड़ाई-तबस्सुम-चाँद-आईना-गुलाब

अदम गोंडवी

ज़ुल्फ़-अँगड़ाई-तबस्सुम-चाँद-आईना-गुलाब

भुखमरी के मोर्चे पर ढल गया इनका शबाब

पेट के भूगोल में उलझा हुआ है आदमी

इस अहद में किसको फुरसत है पढ़े दिल की किताब

इस सदी की तिश्नगी का ज़ख्म होंठों पर लिए

बेयक़ीनी के सफ़र में ज़िंदगी है इक अजाब

डाल पर मज़हब की पैहम खिल रहे दंगों के फूल

सभ्यता रजनीश के हम्माम में है बेनकाब

चार दिन फुटपाथ के साए में रहकर देखिए

डूबना आसान है आँखों के सागर में जनाब॥

हिन्दू या मुस्लिम के अहसासात को मत छेड़िए

अदम गोंडवी

हिंदू या मुस्लिम के अहसासात को मत छेड़िए

अपनी कुरसी के लिए जज्बात को मत छेड़िए

हममें कोई हूण, कोई शक, कोई मंगोल है

दफ़्न है जो बात, अब उस बात को मत छेड़िए

ग़लतियाँ बाबर की थी; जुम्हून का घर फिर क्यों जले

ऐसे नाज़ुक वक़्त में हालात को मत छेड़िए

हैं कहाँ हिटलर, हलाक़, ज़ार या चंगेज़ ख़ाँ

मिट गए सब, क़ौम की औकात को मत छेड़िए

छेड़िए इक जंग, मिल-जुल कर गरीबी के खिलाफ़

दोस्त मेरे मजहबी नग़मात को मत छेड़िए॥

तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है

अदम गोंडवी

तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है
मगर ये आँकड़े झूठे हैं ये दावा किताबी है

उधर जमहूरियत का ढोल पीटे जा रहे हैं वो
इधर परदे के पीछे बर्बरीयत है, नवाबी है

लगी है होड़-सी देखो अमीरी औ' गरीबी में
ये गांधीवाद के ढाँचे की बुनियादी खराबी है

तुम्हारी मेज चाँदी की तुम्हारे ज़ाम सोने के
यहाँ जुम्मन के घर में आज भी फूटी रक्काबी है॥

मैं चमारों की गली में ले चलूँगा आपको

अदम गोंडवी

आइए महसूस करिए जिंदगी के ताप को, मैं चमारों की गली तक ले चलूँगा आपको
जिस गली में भुखमरी की यातना से ऊब कर, मर गई फुलिया बिचारी इक कुँएँ में डूब कर
है सधी सिर पर बिनौली कंडियों की टोकरी, आ रही है सामने से हरखुआ की छोकरी
चल रही है छंद के आयाम को देती दिशा, मैं इसे कहता हूँ सरजू पार की मोनालिसा

कैसी यह भयभीत है हिरनी-सी घबराई हुई, लग रही जैसे कली बेला की कुम्हलाई हुई
कल को यह वाचाल थी पर आज कैसी मौन है, जानते हो इसकी खामोशी का कारण कौन है
थे यही सावन के दिन हरखू गया था हाट को, सो रही बूढ़ी ओसारे में बिछाए खाट को
डूबती सूरज की किरनें खेलती थीं रेत से, घास का गड्ढर लिए वह आ रही थी खेत से

आ रही थी वह चली खोई हुई जज्बात में, क्या पता उसको कि कोई भेड़िया है घात में
होनी से बेखबर कृष्णा बेखबर राहों में थी, मोड़ पर घूमी तो देखा अजनबी बाँहों में थी
चीख निकली भी तो होठों में ही घुट कर रह गई, छटपटाई पहले, फिर ढीली पड़ी, फिर ढह गई
दिन तो सरजू के कछारों में था कब का ढल गया, वासना की आग में कौमार्य उसका जल
गया

और उस दिन ये हवेली हँस रही थी मौज में, होश में आई तो कृष्णा थी पिता की गोद में
जुड़ गई थी भीड़ जिसमें ज़ोर था सैलाब था, जो भी था अपनी सुनाने के लिए बेताब था
बढ़ के मंगल ने कहा, 'काका, तू कैसे मौन है, पूछ तो बेटी से आखिर वो दरिंदा कौन है
कोई हो संघर्ष से हम पाँव मोड़ेंगे नहीं, कच्चा खा जाएँगे ज़िंदा उनको छोड़ेंगे नहीं

कैसे हो सकता है होनी कह के हम टाला करें, और ये दुश्मन बहू-बेटी से मुँह काला करें'
बोला कृष्णा से - 'बहन, सो जा मेरे अनुरोध से, बच नहीं सकता है वो पापी मेरे प्रतिशोध से'
पड़ गई इसकी भनक थी ठाकुरों के कान में, वे इकट्ठे हो गए सरपंच के दालान में
दृष्टि जिसकी है जमी भाले की लंबी नोक पर, देखिए सुखराज सिंह बोले हैं खैनी ठोंक कर

'क्या कहें सरपंच भाई! क्या ज़माना आ गया, कल तलक जो पाँव के नीचे था रुतबा पा गया
कहती है सरकार, आपस में मिलजुल कर रहो, सुअर के बच्चों को अब कोरी नहीं हरिजन कहो
देखिए ना यह जो कृष्णा है चमारों के यहाँ, पड़ गया है सीप का मोती गँवारों के यहाँ
जैसे बरसाती नदी अल्हड़ नशे में चूर है, न पुड़े पे हाथ रखने देती है, मगरूर है

भेजता भी है नहीं ससुराल इसको हरखुआ, फिर कोई बाँहों में इसको भींच ले तो क्या हुआ
आज सरजू पार अपने श्याम से टकरा गई, जाने-अनजाने वो लज्जत जिंदगी की पा गई
वो तो मंगल देखता था बात आगे बढ़ गई, वरना वह मरदूद इन बातों को कहने से रही

जानते हैं आप मंगल एक ही मक्कार है, हरखू उसकी शह पे थाने जाने को तैयार है

कल सुबह गरदन अगर नपती है बेटे-बाप की, गाँव की गलियों में क्या इज्जत रहेगी आपकी'

बात का लहजा था ऐसा ताव सबको आ गया, हाथ मुँछों पर गए माहौल भी सन्ना गया
क्षणिक आवेश जिसमें हर युवा तैमूर था, हाँ, मगर होनी को तो कुछ और ही मंजूर था

रात जो आया न अब तूफान वह पुरजोर था, भोर होते ही वहाँ का दृश्य बिल्कुल और था

सिर पे टोपी बेंत की लाठी सँभाले हाथ में, एक दर्जन थे सिपाही ठाकुरों के साथ में
घेर कर बस्ती कहा हलके के थानेदार ने - 'जिसका मंगल नाम हो वह व्यक्ति आए सामने'

निकला मंगल झोपड़ी का पल्ला थोड़ा खोल कर, इक सिपाही ने तभी लाठी चलाई दौड़ कर

गिर पड़ा मंगल तो माथा बूट से टकरा गया, सुन पड़ा फिर, 'माल वो चोरी का तूने क्या
किया?'

'कैसी चोरी माल कैसा?' उसने जैसे ही कहा, एक लाठी फिर पड़ी बस, होश फिर जाता रहा

होश खो कर वह पड़ा था झोपड़ी के द्वार पर, ठाकुरों से फिर दरोगा ने कहा ललकार कर -

"मेरा मुँह क्या देखते हो! इसके मुँह में थूक दो, आग लाओ और इसकी झोपड़ी भी फूँक दो"

और फिर प्रतिशोध की आँधी वहाँ चलने लगी, बेसहारा निर्बलों की झोपड़ी जलने लगी
दुधमुँहा बच्चा व बुढ़ा जो वहाँ खेड़े में था, वह अभागा दीन हिंसक भीड़ के घेरे में था

घर को जलते देख कर वे होश को खोने लगे, कुछ तो मन ही मन मगर कुछ ज़ोर से रोने
लगे

'कह दो इन कुत्तों के पिल्लों से कि इतराएँ नहीं, हुक्म जब तक मैं न दूँ कोई कहीं जाए नहीं'

यह दरोगा जी थे मुँह से शब्द झरते फूल-से, आ रहे थे ठेलते लोगों को अपने रूल से
फिर दहाड़े, 'इनको डंडों से सुधारा जाएगा, ठाकुरों से जो भी टकराया वो मारा जाएगा'

इक सिपाही ने कहा, 'साइकिल किधर को मोड़ दें, होश में आया नहीं मंगल कहो तो छोड़ दें'

बोला थानेदार, 'मुर्गे की तरह मत बाँग दो, होश में आया नहीं तो लाठियों पर टाँग लो

ये समझते हैं कि ठाकुर से उलझना खेल है, ऐसे पाजी का ठिकाना घर नहीं है जेल है'
पूछते रहते हैं मुझसे लोग अकसर यह सवाल, 'कैसा है कहिए न सरजू पार की कृष्णा का हाल'

उनकी उत्सुकता को शहरी नग्नता के ज्वार को, सड़ रहे जनतंत्र के मक्कार पैरोकार को

धर्म, संस्कृति और नैतिकता के ठेकेदार को, प्रांत के मंत्रीगणों को केंद्र की सरकार को

मैं निमंत्रण दे रहा हूँ आएँ मेरे गाँव में, तट पे नदियों के घनी अमराइयों की छाँव में
गाँव जिसमें आज पांचाली उघाड़ी जा रही, या अहिंसा की जहाँ पर नथ उतारी जा रही

हैं तरसते कितने ही मंगल लँगोटी के लिए, बेचती हैं जिस्म कितनी कृष्णा रोटी के लिए

साँप

अज्ञेय

साँप! तुम सभ्य तो हुए नहीं-

नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।

एक बात पूछूँ- (उत्तर दोगे?)

तब कैसे सीखा डँसना-विष कहाँ पाया।

घृणा का गान

अज्ञेय

सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान!
तुम, जो भाई को अछूत कह वस्त्र बचा कर भागे,
तुम, जो बहिनें छोड़ बिलखती, बड़े जा रहे आगे!
रुक कर उत्तर दो, मेरा है अप्रतिहत आह्वान-
सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान!

तुम, जो बड़े-बड़े गद्यों पर ऊँची दूकानों में,
उन्हें कोसते हो जो भूखे मरते हैं खानों में,
तुम, जो रक्त चूस ठठरी को देते हो जल-दान-
सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान!

तुम, जो महलों में बैठे दे सकते हो आदेश,
'मरने दो बच्चे, ले आओ खींच पकड़ कर केश!'
नहीं देख सकते निर्धन के घर दो मुट्ठी धान
सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान!

तुम, जो पा कर शक्ति कलम में हर लेने की प्राण-
'निःशक्तों' की हत्या में कर सकते हो अभिमान!
जिनका मत है, 'नीच मरें, दूढ़ रहे हमारा स्थान'-
सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान!

तुम, जो मंदिर में वेदी पर डाल रहे हो फूल,
और इधर कहते जाते हो, 'जीवन क्या है? धूल!'
तुम, जिस की लोलुपता ने ही धूल किया उद्यान-
सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान!

तुम, सत्ताधारी, मानवता के शव पर आसीन,
जीवन के चिर-रिपु, विकास के प्रतिद्वंद्वी प्राचीन,
तुम, श्मशान के देव! सुनो यह रण-भेरी की तान-
आज तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान!

औपन्यासिक

अज्ञेय

मैं ने कहा : अपनी मनःस्थिति
मैं बता नहीं सकता। पर अगर
अपने को उपन्यास का चरित्र बताता, तो इस समय अपने को
एक शराबखाने में दिखाता, अकेले बैठकर
पीते हुए-इस कोशिश में कि सोचने की ताकत
किसी तरह जड़ हो जाए।
कौन या कब अकेले बैठ कर शराब पीता है?
जो या जब अपने को अच्छा नहीं लगता-अपने को
सह नहीं सकता।

उस ने कहा : हूँ, कोई बात है भला? शराबखाना भी
(यह नहीं कि मुझे इस का कोई तजुरबा है, पर)
कोई बैठने की जगह होगी-वह भी अकेले?
मैं वैसे मैं अपने पात्र को
नदी किनारे बैठाती-अकेले उदास बैठकर कुढ़ने के लिए।

मैंने कहा : शराबखाना
न सही बैठने लायक जगह! पर अपने शहर में
ऐसा नदी का किनारा कहाँ मिलेगा जो
बैठने लायक हो-उदासी में अकेले
बैठकर अपने पर कुढ़ने लायक?

उस ने कहा : अब मैं क्या करूँ अगर अपनी नदी का
ऐसा हाल हो गया है? पर कहीं तो ऐसी नदी
ज़रूर होगी?

मैं ने कहा : सो तो है-यानी होगी। तो मैं
अपने उपन्यास का शराबखाना
क्या तुम्हारे उपन्यास की नदी के किनारे
नहीं ले जा सकता?

उसने कहा: हूँ! वह कैसे हो सकता है?
मैंने कहा : ऐसा पूछती हो, तो तुम उपन्यासकार भी
कैसे बन सकती हो?

उस ने कहा: न सही-हम नहीं बनते उपन्यासकार।

पर वैसी नदी होगी

तो तुम्हारे शराबखाने की ज़रूरत क्या होगी, और उसे
नदी के किनारे तुम ले जा कर ही क्या करोगे?

मैं ने ज़िद कर के कहा: ज़रूर ले जाऊँगा! अब देखो, मैं
उपन्यास ही लिखता हूँ और उस में
नदी किनारे शराबखाना बनाता हूँ!

उस ने भी ज़िद कर के कहा: वह

बनेगा ही नहीं! और बन भी गया तो वहाँ तुम अकेले बैठ कर
शराब नहीं पी सकोगे!

मैं ने कहा: क्यों नहीं? शराबखाने में अकेले
शराब पीने पर मनाही होगी?

उस ने कहा: मेरी नदी के किनारे तुम को
अकेले बैठने कौन देगा, यह भी सोचा है?

तब मैंने कहा: नदी के किनारे तुम मुझे अकेला
नहीं होने दोगी, तो शराब पीना ही कोई
क्यों चाहेगा, यह भी कभी सोचा है?

इस पर हम दोनों हँस पड़े। वह
उपन्यास वाली नदी और कहीं हो न हो,
इस हँसी में सदा बहती है,
और वहाँ शराबखाने की कोई ज़रूरत नहीं है।

चीनी चाय पीते हुए

अज्ञेय

चाय पीते हुए

मैं अपने पिता के बारे में सोच रहा हूँ।

आपने कभी

चाय पीते हुए

पिता के बारे में सोचा है?

अच्छी बात नहीं है

पिताओं के बारे में सोचना।

अपनी कलाई खुल जाती है।

हम कुछ दूसरे हो सकते थे।

पर सोच की कठिनाई यह है कि दिखा देता है

कि हम कुछ दूसरे हुए होते

तो पिता के अधिक निकट हुए होते

अधिक उन जैसे हुए होते।

कितनी दूर जाना होता है पिता से

पिता जैसा होने के लिए!

पिता भी

सबसे चाय पीते थे

क्या वह भी

पिता के बारे में सोचते थे-

निकट या दूर?

जब यार देखा नैन भर

अमीर खुसरो

जब यार देखा नैन भर दिल की गई चिंता उतर
ऐसा नहीं कोई अजब राखे उसे समझाए कर।

जब आँख से ओझल भया, तड़पन लगा मेरा जिया
हक्का इलाही क्या किया, आँसू चले भर लाय कर।

तू तो हमारा यार है, तुझ पर हमारा प्यार है
तुझ दोस्ती बिसियार है एक शब मिलो तुम आय कर।

जाना तलब तेरी करूँ दीगर तलब किसकी करूँ
तेरी जो चिंता दिल धरूँ, एक दिन मिलो तुम आय कर।

मेरा जो मन तुमने लिया, तुमने उठा गम को दिया
तुमने मुझे ऐसा किया, जैसा पतंगा आग पर।

खुसरो कहै बातां ग़ज़ब, दिल में न लावे कुछ अजब
कुदरत खुदा की है अजब, जब जिव दिया गुल लाय कर।

निशुल्क मौत

अभिमन्यु अनंत

शीशमहल-सा विशाल अस्पताल

चिकने चमकते गलियारे में खाँसते-लंगड़ाते, कराहते-काँपते रोगियों का हुजूम
सुस्त चाल में इधर से उधर मंडराती, लोगों के दर्दों के बीच खिलखिलाती

चहकती इठलाती बीमार परिचारिकाएँ

सुबह पाँच बजे अपने घर से निकली, बिन खाये बिन पीये थर-थर काँप रही

बाईस मील के सफर के बाद पहुँची वह बुढ़िया

लकड़ी की बेंच पर बैठे, साढ़े पाँच सख्त घंटे बीत चुके।

पिछली बार खाली शीशी लिये लौट गयी थी, अस्पताल में दवा नहीं थी

उससे पहले थी डाक्टरों की हड़ताल, बीमार डाक्टर नियत वक्त से, तीन घंटे बाद पहुँचा

उसकी प्रतीक्षा में बैठे पैंतीस रोगियों ने, एक साथ राहत की एक साँस ली

परिचारिका को भीतर करके, डाक्टर ने दरवाजा बंद कर लिया

घंटों इंतजार करते लोगों को पीछे से, पंद्रह विशेष लोग आये, सीधे दरवाजे के पास खड़ हुए

पंद्रह मिनट बाद दरवाजा खुला, परिचारिका बालों पर हाथ फेरती

हँसती हुई बाहर आयी, भीतर से लायी हँसी को निगल कर

दरवाजे के पास खड़े, विशेष रोगियों में से एक को भीतर भेजा

पंद्रह मिनट बाद फिर दूसरे को फिर तीसरे को

साढ़े पाँच घंटों से बैठी वह बुढ़िया, लकड़ी की बेंच पर कराहती रही

पाँच घंटों से बैठा एक बीमार जवान बोला

हम लोग पहले से आये हैं, ये लोग बाद में, परिचारिका झुँझलायी

मैं तुम्हारे हुक्म से काम नहीं करती, और डाक्टर के घर से होकर आये हुए

उन विशेष रोगियों को, डाक्टर की दूकान में एक-एक करके भेजती रही।

दो घंटे बीत गये, लकड़ी की कठोर बेंच पर, पैंतीस गरीब रोगी इंतजार करते रहे

बाईस मील की दूरी से पहुँची, साढ़े सात घंटों से प्रतीक्षा करती वह बुढ़िया

लकड़ी की सख्ती पर लुढ़क गयी, सरकारी अस्पताल में

डाक्टर की दुकान की सरगर्मी बनी रही, पड़ा रहा निश्चल लकड़ी की बेंच पर

प्रतीक्षा का ठंडा जीवन, और ऐसा तो कई बार हो जाता है।

अस्पताल के बाहर कुत्ते मरते रहते हैं। आदमी तो अस्पताल के भीतर मरते हैं।

विवशता

अभिमन्यु अनंत

तुम्हारी दर्दनाक चीख सुनकर
मैं जान तो गया कि सरकस का शेर
दीवार फाँदकर
पहुँच गया तुम्हारे घर के भीतर
अपने बगीचे के फलों को
मेरे बच्चों से बचाने के लिए
तुमने खड़ी कर दी है जो ऊँची दीवार
उसे मैं नहीं कर पा रहा पार
तुम्हें शेर से बचा पाने
मैं नहीं पहुँच पा रहा।

आशाएँ

अभिमन्यु अनंत

जब दिन-दहाड़े
गाँव में प्रवेश कर
वह भेड़िया खूँखार
दोनों के उस पहले बच्चे को
खाकर चला गया
दिन तब रात बना रहा
गाँव के लोग दरवाजे बंद किए
रहे रो-धोकर अकेले में
एक दूसरे को दूसरे से
आश्वासन मिला ।
कोई बात नहीं अभी तो पड़ी है जिंदगी
जन्मा लेंगे हम बच्चे कई
झाड़ियों के बीच पैने कानों से
एक दूसरे भेड़िये ने यह सुना
अपनी लंबी जीभ लपलपाता रहा।

इश्तहारों के वायदे

अभिमन्यु अनंत

उस सरगर्मी की याद दिलाते
कई परचे कई इश्तहार आज भी
गलियों की दीवारों पर घाम-पानी सहते
चिपके हैं अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए
उन पर छपे लंबे-चौड़े वायदों पर
परतें काई की जर्मी जा रही है।
जिन्हें देखते-देखते
आँखें लाल हो जाती हैं।
तुम्हारे पास पुलिस है हथकड़ियाँ हैं
लोहे की सलाखें वाली चारदिवारी है
मुझे गिरफ्तार करके चढ़ा दो सूली
उसी माला को रस्सी बनाकर
जो कभी तुम्हें पहनाया था
क्योंकि मैंने तुम्हारे ऊपर के विश्वास की
बड़ी बेरहमी से हत्या कर दी है।
इस जुर्म की सजा मुझे दे दो।
मैं इन इश्तहारों को
अब सह नहीं पा रहा हूँ।

दीवार

अभिमन्यु अनंत

दीवार खड़ी की गई थी

गाँव में भेड़िये का प्रवेश रोकने को

इस दीवार को गिरा दिया तुमने

दूसरी दीवार उन्हीं पत्थरों से

तुमने शहर में खड़ी कर दी

अपने बीच आदमी का प्रवेश रोकने को

अब गाँव में भेड़िये दिन दहाड़े आ जाते हैं

पर आदमी तुम तक नहीं पहुँच पाता

अभी पाँच साल होने में

कोई पाँच साल बाकी है।

आँख पर पट्टी रहे और अक़ल पर ताला रहे

अदम गोंडवी

आँख पर पट्टी रहे और अक़ल पर ताला रहे
अपने शाहे-वक़्त का यूँ मर्तबा आला रहे
तालिबे-शोहरत हैं कैसे भी मिले मिलती रहे
आए दिन अखबार में प्रतिभूति घोटाला रहे
एक जन सेवक को दुनिया में अदम क्या चाहिए
चार छह चमचे रहें माइक रहे माला रहे।

मुझसे पिछले बरस की बात न कर

अर्श मलसियानी

पूछ अगले बरस मैं क्या होगा

मुझसे पिछले बरस की बात न कर

यह बता हाल क्या है लाखों का

मुझसे दो-चार-दस की बात न कर

यह बता काफ़िले पै क्या गुज़री?

महज़ बाँगे-जरस की बात न कर

किस्सए-शैखे-शहर रहने दे

मुझसे इस बुलहबिस की बात न कर

फूल और काँटा

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

फूल और काँटा

हैं जन्म लेते जगह में एक ही,
एक ही पौधा उन्हें है पालता
रात में उन पर चमकता चाँद भी,
एक ही सी चाँदनी है डालता ।

मेह उन पर है बरसता एक सा,
एक सी उन पर हवाएँ हैं बहीं
पर सदा ही यह दिखाता है हमें,
ढंग उनके एक से होते नहीं ।

छेदकर काँटा किसी की उंगलियाँ,
फाड़ देता है किसी का वर वसन
प्यार-झूबी तितलियों का पर कतर,
भँवर का है भेद देता श्याम तन ।

फूल लेकर तितलियों को गोद में
भँवर को अपना अनूठा रस पिला,
निज सुगन्धों और निराले ढंग से
है सदा देता कली का जी खिला ।

है खटकता एक सबकी आँख में
दूसरा है सोहता सुर शीश पर,
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ।

कर्मवीर

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध

देख कर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं
रह भरोसे भाग के दुख भोग पछताते नहीं
काम कितना ही कठिन हो किन्तु उबताते नहीं
भीड़ में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं
हो गये एक आन में उनके बुरे दिन भी भले
सब जगह सब काल में वे ही मिले फूले फले ।

आज करना है जिसे करते उसे हैं आज ही
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही
मानते जो भी हैं सुनते हैं सदा सबकी कही
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आप ही
भूल कर वे दूसरों का मुँह कभी तकते नहीं
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ।

जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं
आज कल करते हुये जो दिन गंवाते हैं नहीं
यत्न करने से कभी जो जी चुराते हैं नहीं
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके लिये
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ।

व्योम को छूते हुये दुर्गम पहाड़ों के शिखर
वे घने जंगल जहां रहता है तम आठों पहर
गर्जते जल-राशि की उठती हुयी ऊँची लहर
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लपट
ये कंपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं
भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ।

आवारा

मजाज़ लखनवी

शहर की रात और मैं नाशाद-ओ-नाकारा फिरूँ, जगमगाती जागती सड़कों पे आवारा फिरूँ

गैर की बस्ती है, कब तक दर-ब-दर मारा फिरूँ, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ
झिलमिलाते कुमकुमों की राह में जंजीर सी, रात के हाथों में दिन की मोहिनी तस्वीर सी

मेरे सीने पर मगर, चलती हुई शमशीर सी, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ

ये रुपहली छाँव, ये आकाश पर तारों का जाल, जैसे सूफी का तसव्वुर, जैसे आशिक का खयाल

आह लेकिन कौन समझे, कौन जाने जी का हाल, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ
फिर वो टूटा एक सितारा, फिर वो छूटी फुलझड़ी, जाने किसकी गोद में, आई ये मोती की लड़ी
हूक सी सीने में उड़ी, चोट सी दिल पर पड़ी, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ

रात हँस - हँस के ये कहती है कि मयखाने में चल, फिर किसी शहनाज़-ए-लालारुख के काशाने में चल

ये नहीं मुमकिन तो फिर ऐ दोस्त वीराने में चल, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ
हर तरफ़ बिखरी हुई रंगीनियाँ रानाइयाँ, हर कदम पर इशारतें लेती हुई अंगड़ाइयाँ
बढ़ रही हैं गोद फैलाये हुए रुस्वाइयाँ, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ

रास्ते में रुक के दम लूँ, ये मेरी आदत नहीं, लौट कर वापस चला जाऊँ, मेरी फ़ितरत नहीं

और कोई हमनवा मिल जाये, ये किस्मत नहीं, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ
मुंतज़िर है एक, तूफ़ान-ए-बला मेरे लिये, अब भी जाने कितने, दरवाज़े वहाँ मेरे लिये
पर मुसीबत है मेरा, अहद-ए-वफ़ा मेरे लिए, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ

जी में आता है कि अब अहद-ए-वफ़ा भी तोड़ दूँ, उनको पा सकता हूँ मैं ये आसरा भी छोड़ दूँ

हाँ मुनासिब है ये जंजीर-ए-हवा भी तोड़ दूँ, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ
एक महल की आड़ से निकला वो पीला माहताब, जैसे मुल्ला का अमामा, जैसे बनिये की किताब
जैसे मुफलिस की जवानी, जैसे बेवा का शबाब, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ

दिल में एक शोला भड़क उठा है, आखिर क्या करूँ, मेरा पैमाना छलक उठा है, आखिर क्या करूँ

ज़ख्म सीने का महक उठा है, आखिर क्या करूँ, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ
जी में आता है, ये मुर्दा चाँद-तारे नोंच लूँ, इस किनारे नोंच लूँ, और उस किनारे नोंच लूँ
एक दो का ज़िक्र क्या, सारे के सारे नोंच लूँ, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ

मुफलिसी और ये मज़ाहिर, हैं नज़र के सामने, सैकड़ों चंगेज़-ओ-नादिर, हैं नज़र के सामने

सैकड़ों सुल्तान-ओ-ज़ाबिर, हैं नज़र के सामने, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ
ले के एक चंगेज़ के हाथों से खंज़र तोड़ दूँ, ताज पर उसके दमकता है जो पत्थर तोड़ दूँ
कोई तोड़े या न तोड़े, मैं ही बढ़कर तोड़ दूँ, ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ

बढ़ के इस इंदर-सभा का साज़-ओ-सामाँ फूँक दूँ इस का गुलशन फूँक दूँ उस का शबिस्ताँ फूँक दूँ
तख़्त-ए-सुल्ताँ क्या, मैं सारा क़स्र-ए-सुल्ताँ फूँक दूँ ऐ ग़म-ए-दिल क्या करूँ, ऐ वहशत-ए-दिल क्या करूँ।

नौजवान खातून से

मजाज़ लखनवी

हिजाब ऐ फ़ितनापरवर अब उठा लेती तो अच्छा था
खुद अपने हुस्न को परदा बना लेती तो अच्छा था

तेरी नीची नज़र खुद तेरी अस्मत की मुहाफ़िज़ है
तू इस नशतर की तेज़ी आजमा लेती तो अच्छा था

तेरी चीने ज़बी खुद इक सज़ा कानूने-फ़ितरत में
इसी शमशीर से कारे-सज़ा लेती तो अच्छा था

ये तेरा ज़र्द रुख, ये खुशक लब, ये वहम, ये वहशत
तू अपने सर से ये बादल हटा लेती तो अच्छा था

दिले मजरूह को मजरूहतर करने से क्या हासिल
तू आँसू पोंछ कर अब मुस्कुरा लेती तो अच्छा था

तेरे माथे का टीका मर्द की किस्मोत का तारा है
अगर तू साजे बेदारी उठा लेती तो अच्छा था

तेरे माथे पे ये आँचल बहुत ही खूब है लेकिन
तू इस आँचल से एक परचम बना लेती तो अच्छा था।

में हर जगह था वैसा ही

अशोक कुमार पांडेय

में बंबई में था

तलवारों और लाठियों से बचता-बचाता भागता-चीखता
जानवरों की तरह पिटा और उन्हीं की तरह ट्रेन के डब्बों में लदा-फँदा
सन साठ में मद्रासी था, नब्बे में मुसलमान
और उसके बाद से बिहारी हुआ

में कश्मीर में था

कोड़ों के निशान लिए अपनी पीठ पर
बेघर, बेआसरा, मजबूर, मजलूम
सन तीस में मुसलमान था
नब्बे में हिंदू हुआ

में दिल्ली में था

भालों से गुदा, आग में भुना, अपने ही लहू से धोता हुआ अपना चेहरा
सैंतालीस में मुसलमान था
चौरासी में सिख हुआ

में भागलपुर में था

में बड़ौदा में था
में नरोड़ा-पाटिया में था
में फलस्तीन में था अब तक हूँ वहीं अपनी कब्र में साँसें गिनता
में ग्वाटेमाला में हूँ
में ईराक में हूँ
पाकिस्तान पहुँचा तो हिंदू हुआ

जगहें बदलती हैं

वजूहात बदल जाते हैं
और मजहब भी, मैं वही का वही!